

# हिन्दी साहित्य में स्त्री प्रधान लेखन एवं चिन्तन की प्रासंगिकता

कु. दीप्ति

शोधार्थी हिन्दी विभाग

जीवाजी विश्वविद्यालय ग्वालियर (म.प्र.)

## शोध-सार

हमारे देश में स्त्रियों की स्थिति सदैव समान नहीं रही है। इनकी में विभिन्न युगों में परिवर्तन होते रहे हैं। स्त्रियों की स्थिति में वैदिक काल से लेकर आधुनिक काल तक अनेक परिवर्तन हुए हैं। वैदिक काल में स्त्रियों की स्थिति में परिवार और समाज में उन्हें सम्मान दिया जाता था।

उनको शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार भी था। और सम्पत्ति में भी पुरुषों के बराबर अधिकार मिले हुए थे। समाजों में भी स्वतन्त्र रूप से भाग लेती थी। में स्त्रियों के सम्मान में कमी आई। उन्हें नीची दृष्टि से देखा जाने लगा।

पहले स्त्रियों को पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त थी किन्तु धीरे-धीरे उनकी स्वतन्त्रता घटने लगी उनके सम्मान में कमी आने लगी। उसके लिए निन्दनीय प्रयोग होने लगा। धीरे-धीरे स्त्रियों के लिए कठोर नियम बनने लगे शिक्षा समाप्त कर दी गई।

पर्दा प्रथा को समाज में लागू किया कि विभिन्न काल में स्त्रियों को गरिमामय स्थान प्राप्त था यह कहकर सम्मान का स्थान प्रदान किया गया। पौराणिक काल में स्त्री को देवी के रूप में एवं शक्ति का प्रतीक माना जाता है।

मुख्य बिन्दु  
आधुनिक,  
सम्पत्ति,  
स्वतन्त्रता,  
निन्दनीय,  
गरिमामय,  
पौराणिक

साहित्य जीवन के तानो बानों से साकार होता है। जीवन सम-सामयिक परिस्थितियों से जुड़ा होता है। ये परिस्थितियाँ मनुष्य के विकास का मापदण्ड होती हैं। वास्तविक जीवन से कटा हुआ

साहित्य कितना ही सरस क्यों न हो, समाज में अपना प्रभाव छोड़ नहीं सकता।

“19वीं शताब्दी के प्रारम्भ में आर्य समाज व अन्य समाजों में आदि संस्थानों से स्त्री की शिक्षा के लिए प्रयास प्रारम्भ कर दिए। समाज में राजाराममोहन राय, स्वामी दयानन्द सरस्वती स्वामी विवेकानन्द, विद्यासागर आदि ने समाज की कुरीतियों के विरुद्ध आवाज उवाई।”<sup>1</sup> इन्होंने समकालीन अंग्रेजी शासकों के सामने बाल विवाह एवं बहु विवाह पर रोक लगाई, सती प्रथा का विरोध अशिक्षा की रोक की आवाज उठाई।

“इसके परिणामस्वरूप विभिन्न कानून बनाये गये। 1829, 1856 में हिन्दु विधवा पुनर्विवाह अधिनियम 1891 बहुविवाह पर रोक के लिए कानून बनाये गये। इन कानूनों से आने वाले समय में स्त्री अधिकारों में जागरूकता बढ़ी। आत्म संघर्ष रचना के संघर्ष पर प्रगट हुआ है।”<sup>2</sup> स्त्री साहित्यकार के लिए बाहरी संदर्भों में पहले उसका आंतरिक समय होता है जहाँ वह जीती है और सांस लेती है। दूसरी ओर होती है समय की चुनौतियां उनके जीवन व सृजन के बीच अनवरत युद्ध की स्थिति बनी रहती है। उसकी राह में व्यवधान है।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद महिलाओं में राजनीतिक चेतना बढ़ी है और उन्होंने विधायको, सांसदो, राज्यपाल, मंत्री, लोकसभा अध्यक्ष, मुख्यमंत्री, प्रधानमंत्री और राष्ट्रपति तक का दायित्व संभाला है। वैश्वीकरण के प्रभाव से स्त्रियों में विश्वव्यापी जागरूकता पैदा हुई है।

“स्त्री और पुरुष दोनों ही समाज के नियामक है अर्थात् दोनों ही जीवन रूपी रथ के दो पहिये है। लेकिन समाज में एक का दर्जा दूसरे से ऊपर आँका जाता है। स्त्री को सर्वदा से हीन मानकर एक पक्ष उस पर हावी रहा। उसकी भावनाओं— जिज्ञासाओं को एक मनुष्य के रूप में नहीं देखा गया। औद्योगिक क्रान्ति के पश्चात् न केवल जीवन शैली व सांस्कृतिक मूल्यों में परिवर्तन उभर कर प्रस्तुत हुए हैं।”<sup>3</sup>

समानता व स्वतंत्रता की अवधारणाओं ने समूहों के परस्पर विभेदों को हटाकर समान अधिकारों के उपयोग की व्यवस्था को प्रस्तुत किया। इसी परिप्रेक्ष्य में नर व स्त्री के सम्बन्धों और परिस्थितियों की असमानता, एक महत्वपूर्ण प्रश्न के रूप में उभरा।

स्वयं को स्त्री के रूप में देखने, जताने, और अपने स्वतन्त्र अस्तित्व को स्थापित करते हुए स्त्रीवाद की आवश्यकता पड़ी।

“इस विचारधारा की उत्पत्ति मूलतः पितृसत्तात्मक सत्ता की प्रतिक्रिया स्वरूप हुई है। जिसका प्रयास स्त्री के अस्तित्व को स्वीकार करके उसे मनुष्य रूप में प्रतिष्ठित करने का है।”<sup>4</sup> समाज में उसे या तो देवी का रूप मानकर उसे ऊँचे सिंहासन पर बिठा दिया गया था फिर कुल्टा कहकर समाज से बहिष्कृत कर दिया गया। संक्षेप में, स्त्री साहित्य, स्त्री को मनुष्यता के रूप में स्थापित करने का प्रयास है तथा हाशिये पर ढकेल दी गई स्त्री अस्मिता को पुनः केन्द्र में लाने का प्रयास किया गया है।

स्त्री द्वारा हुई अभिव्यक्तियों को नकारने की कोशिश की गई। सामाजिक परम्पराओं को चुनौती देने की पथभ्रष्टता कहा गया किन्तु निडर स्त्री रचनाकारों ने अपनी साधना जारी रखी। स्त्री लेखन की शुरुआत का श्रेय स्त्री को जाता है। आज साहित्य की विभिन्न विधाओं में स्त्रीयों से कोई क्षेत्र अछूता नहीं रहा रवी लेखन का मुदा तो एक क्षेत्र है। पर लेखन के क्षेत्र में केवल औरत पूरी समाज व्यवस्था है।

स्त्रियों की संवेदनशीलता अन्तर्दृष्टि सबसे बढ़कर पीडा जो सदियों से उनके खाते में संचित होती आई है। रवनात्मक साहित्य सृजन में विशेष रूप से स्त्रियों की भागीदारी में निरन्तर वृद्धि हो रही है। जब स्त्री लिखती है तो एक जिम्मेदारी उठा रही है। मैं सोचती हूँ कि चाहे अनुभूति कितनी ही तीव्र व संवेदना कितनी ही संघन और तरल क्यों न हो भोक्ता और दृष्य की संवेदना में अन्तर होता ही है। “पुरुष वर्चस्व के चलते साहित्य क्षेत्र में स्त्री लेखन पर यह व्यंग्य आरोपित हुआ कि स्त्री लेखन इसलिए छप रहा है कि वे स्त्री है। और ऐसा सोचना यह आक्षेप पुरुष विकृत मानसिकता एवं हीनता का शिकार होने की पराकाष्ठा है।”<sup>5</sup>

प्राचीन भारतीय समाज में नारी का स्थान परिस्थितियों के अनुसार परिवर्तित होता रहा है। भारत की प्राचीनतम सैन्धव सभ्यता के धर्म में मातृदेवी को सर्वोच्च पद प्रदान किया जाना, उसके समाज में उन्नत स्त्री दशा का सूचक माना जा सकता है। ऋग्वैदिक कालीन समाज ने उसे आदरपूर्ण स्थान दिया। उसके धार्मिक तथा सामाजिक अधिकार पुरुषों के ही समान थे। कन्याओं का भी उपनयन संस्कार होता था।

स्त्रीवादी इतिहास के क्षेत्र के आरंभिक सूत्रधारों में से लर्नर ने सर्वप्रथम यह कहा कि स्त्रियों का इतिहास है तथा स्त्रियाँ इतिहास में है। उनका यह कथन सामाजिक वैज्ञानिकों के लिए एक घोषणापत्र बन गया तथा जेंडर के बारे में विमर्श का एक नया रास्ता मिला। स्त्रीगत पहचान को स्वभाविक तथा आवश्यक के बजाए कृत्रिम माना गया। स्त्रियों के असमान स्थिति के बारे में प्रश्न होने लगे।

## संदर्भ सूची

1. सपकाले उषा, हिन्दी उपन्यासों में नारी, विद्या प्रकशन कानपुर, संस्करण 2014, पृ. 14
2. कश्यप आलोक कुमार, भारतीय समाज में नारी दशा में दिशा, आर्या पब्लिकेशन नई दिल्ली, संस्करण 2012, पृ. 10
3. प्रसाद राजेन्द्र, नारी आधी आबादी की पूरी बात, राजधानी प्रकाशन मुगलसराय, संस्करण 2015, पृ. 9
4. कुल्हरि लक्ष्मी विजय, नारी विमर्श दशा एवं दिशा संजय प्रकाशन नई दिल्ली, संस्करण 2015, पृ. 4
5. सपकाले उषा, हिन्दी उपन्यासों में नारी, विद्या प्रकशन कानपुर, संस्करण 2014, पृ. 35



Contributors Details:

कु. दीप्ति  
शोधार्थी हिन्दी विभाग  
जीवाजी विश्वविद्यालय ग्वालियर (म.प्र.)